समकालीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक मुद्दे

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

समकालीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक मुद्दे

डॉ. गौरव त्रिपाठी, डॉ. कामिनी वर्मा

नमूना • SAMPLE

अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस
दिल्ली (भारत)

अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस
एल–9ए, प्रथम तल, गली न0 42,
सादतपुर एक्सटेंसन, दिल्ली–110094 (भारत)
Phone : 9968628081, 9555149955, 9013387535
E-mail : akhandpublishinghouse@gmail.com,
akhandpublishing@yahoo.com
Website : www.akhandbooks.com

समकालीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक मुद्दे

संस्करण : 2019
© सम्पादक
ISBN: 978-93-88998-19-2

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस प्रकाशन के किसी भी हिस्से को प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इलेक्ट्रॉनिक या किसी अन्य माध्यम द्वारा पुनः प्राप्ति समेत किसी भी रूप में प्रतिलिपिकृत, अनुवादित, संगृहीत नहीं किया जा सकता है और न ही किसी भी रूप में या किसी भी माध्यम द्वारा इसे प्रसारित किया जा सकता है।
इस पुस्तक में लेखक द्वारा व्यक्त विचार उनके व्यक्तिगत हैं जिसका प्रकाशक से कोई संबंध नहीं है।

भारत में प्रकाशित

झपसू यादव 'अखण्ड पब्लिशिंग हाउस' के द्वारा प्रकाशित।

SAMPLE COPY

समर्पण

हमारे प्रेरणा स्रोत,
प्रातः स्मरणीय, पूजनीय
पुराणविद्
डॉ. कमला कान्त त्रिपाठी,
(प्रिंसिपल, इण्टर कॉलेज, तेजगढ़, प्रतापगढ़, उत्तर प्रदेश)
एवं
पूजनीया श्रीमती कल्पना त्रिपाठी
को सादर।

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

पुरोवाक्

परिवर्तन प्रकृति की अवश्यंभावी प्रक्रिया एवं नियम है। यह परिवर्तन मानव से जुड़े सभी क्रिया व्यापारों में देश काल एवं परिस्थिति के सापेक्ष यथास्थिति दृष्टिगत होते रहते है। भारत में सामाजिक – राजनीतिक परिवर्तन की तीव्रता अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् अधिक बढ़ी। समाज में चले आ रहे अंधविश्वास, भेद–भाव, अस्पृश्यता, सती–प्रथा, बाल–विवाह प्रभृति सामाजिक कुरीतियों के विरूद्ध अनेक स्तरों पर होने वाले सामाजिक सुधार आन्दोलन इस दिशा में मानव जीवन को रेखांकित करने वाले महत्वपूर्ण मोड़ थे। स्वतंत्रता के पश्चात् व्यक्ति के मौलिक अधिकारों तथा सामाजिक एवम् राजनीतिक कर्त्तव्यों पर विशेष बल देते हुए पंथ निरपेक्ष समाजवादी लोकतंत्र की स्थापना की संकल्पना के साथ संविधान लागू कर दिया गया। यद्यापि शिक्षा के प्रचार–प्रसार, वैज्ञानिक आविष्कारों, मनोवैज्ञानिक प्रयोगों एवं चिन्तन प्रक्रियाओं से सम्पूर्ण समाज प्रभावित हो रहा है, तथापि भारतीय संस्कृति का प्राण तत्त्व ''वसुधैव कुटुम्बकम' भारतीय जीवन रेखा से सातत्यता के साथ सम्पृक्त होकर भारतीय धरा पर होने वाले सभी प्रकार के परिवर्तनों, परिवर्धनों एवम् सम्बर्धनों का दिशा प्रदान करता है। यह परिवर्तन या बदलाव चाहे सामाजिक हो या राजनैतिक, चाहे सांस्कृतिक हो या आर्थिक, या दार्शनिक। यही विरासत ही भारतीयता की अक्षय पूंजी है, जिसका क्षरण कभी भी नही होगा और यही भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में प्रति क्षण स्पन्दित होता रहता है।

औद्योगीकरण तथा भूमण्डलीकरण के अर्थ प्रधान युग में चुतर्दिक मनुष्यता, सामाजिकता, स्थानीयता, राजनीतिक राष्ट्रीयता की पहचान संकटग्रस्त सी प्रतीत होती है। मूल्यों का पतन, सहयोग–सहकार,

परम्परा तथा पारस्परिकता की टूटन, सरोकारों तथा प्रतिस्पर्धात्मक प्राथमिकताओं का संकुचन, आत्म संकेन्द्रित चिन्तन तथा त्यागशील संस्कृति की कीमत पर भोगशील संस्कृति के वरण की होड़ ने त्रासद वातावरण का सृजन अवश्य किया है। ऐसी तमाम विद्रूपताओं एवम् त्रासद स्थितियों से उबरने के प्रयास सदैव होते रहे है और होते रहेगें। इतिहास का नियम तथा पंरपरा हमें बताती है कि भारतीय भूमि पर हम सदैव कामयाब हुए है और हमारी संस्कृति की पाचन शक्ति का मुकाबला कोई भी परिवर्तन कर सका है। हम सदैव मुक्ति का मार्ग निकाला और कामयाब हुए है। इसी प्रकार के सकारात्मक सृजनशील ''समकालीन भारत में सामाजिक एवं राजनैतिक मुद्दे'' संज्ञक ग्रन्थ के प्रकाशन का एक स्तुत्य प्रयास है जो अनेक सामाजिक–राजनीतिक विद्वान लेखकों की उर्वर तूलिका से प्रसूत है और कर्मशील विद्वान द्वय सम्पादक डॉ. गौरव त्रिपाठी एवं डॉ. कामिनी वर्मा के अथक प्रयास से साकार रूप ग्रहण किया है। इस श्लाघनीय कार्य के लिए लेखक एवं सम्पादक गण बधाई के पात्र हैं। इस सुकृत्य के लिए मैं इस प्रकाशन से जुड़े हुए सभी लेखकों, सम्पादकों तथा प्रकाशक को साधुवाद देता हूँ। इस ग्रन्थ से सामान्य अध्येताओं के साथ–साथ अनुसंधानुत्स्कों पर्याप्त लाभ एवं मार्गदर्शन मिलेगा।

शरद पूर्णिमा
22 दिसम्बर 2018

प्रो. डॉ. लालजी त्रिपाठी
एम. ए. (प्रा. इतिहास), पी–एच.डी., डी.लिट.,
प्रोफेसर एवं पूर्व प्राचार्य
मड़ियाहूँ पी.जी. कॉलेज,
मड़ियाहूँ, जौनपुर।

भूमिका

समय बदला है। समाज बदला है। सामाजिक मान्यताएं बदल रही हैं। परम्पराएं, संस्कृतियां, भाषाएं; सब अपने–अपने पक्ष–विपक्ष को साथ बदलाव की ओर बढ़ चली है। हम स्वयं को एक अनोखे और अद्भुत ''डायनेमिक कल्चर' यानी गतिशील या यूं कहें प्रगतिशील संस्कृति के संग उपस्थित पाकर अभिभूत हैं। अभिव्यक्तियों के वैविध्य का ज्वार उमड़ पड़ा है और नए–नए सामाजिक मुहावरें गढ़े जा रहे हैं तो बाजार नए–नए टोटकों के साथ रहन–सहन का नित नया व्याकरण प्रस्तुत कर दे रहा है। लोकतंत्र का हर खम्भा अपनी ही धुन में खुद ही खुद की पीठ थपथपाने की जुगत में लगा हुआ है लोग तरह–तरह की आशंकाओं के साथ उसी दिशा में चलते–बढ़ते जा रहे हैं, जिस ओर हमारा समय, समाज, परम्पराएं, संस्कृतियां और भाषाएं बढ़ चली हैं।

हमारा यह समय हमारे पास एकाएक–अचानक नहीं आ टपका है। बदलाव की बयार तो पिछली सदी के अंतिम दशक में ही बहने लगी थी। याद कीजिए 1995 से 2005 तक के समय को ; जब बदलाव का पहला झोंका आया था। यह वही समय था; जब मोबाइल फोन, इंटरनेट और पहली सोशल नेटवर्किंग साइट हमारे हिस्से में आया था। यह वही समय था जब देश के अखबार पूरी तरह रंगीन होने शुरू हो गए थे; टेलीविजन न्यूज चैनलों की बाढ़ सी आ गयी थी और एफ एम चैनल की धुन पर हम गुनगुनाने लगे थे। इसी समय में मॉल, ब्रैण्डेड कपड़े और ब्रैण्डेड खाने के आउटलेट्स हमारे शब्द में आ गए। इस समय को हमने 'सूचना क्रांति' का समय कहा। 2005 से 2015 तक का समय ज्ञान के विकास का समय कहा गया। ज्ञान की नई–नई परम्पराओं को खोजने

और विकसित करने का समय रहा। इसी समय 'नॉलेज बेस्ड इकोनॉमी' और 'नॉलेज बेस्ड मार्केट' का हल्ला मचाया गया। विश्वविद्यालयों में ज्ञान की नई विधाओं को आगे बढ़ाने पर काम हुआ। सच कहा जाए तो यह समय 'ज्ञान क्रांति' का समय कहा जा सकता है। 2015 से 2025 तक का समय, जिस समय में हम हैं, वह नवाचार–नव प्रवर्तन का समय है। नए–नए आइडिया, नई–नई स्किल और नए–नए व्यवहारों का समय है यह पूरी दुनिया इस नएपन के चकाचौंध में दमक रही है।

जाहिर है कि इस समय में सामाजिक व राजनीति सरोकारों के नए–नए अध्याय गढ़े जाने की होड़ मची हुई है। सत्ता, जनता और बाजार की पारस्परिक नातेदारी को नित नया आयाम दिया जा रहा है। टेक्नोलॉजी ने नए तरह का समाज बनाने का काम किया है। लोगों के रहन–सहन, सोच–विचार, नाते–रिश्ते, मान–दान और पठन–पाठन में तेजी से बदलाव देखने को मिल रहे हैं। वास्तविक दुनिया को छोटा करने और आभासी दुनिया को बड़ा करने में लगे लोगों को अपने बीच होने वाले इन बदलावों का आभास या तो है नहीं और अगर है भी तो 'इग्नोर इट' का फण्डा लागू करके आगे बढ़ने की होड़ अधिक पसंद की जा रही है। 'शब्द संकोच' बढ़ा है, 'फोटो संचार' बढ़ा है। हर कोई अपने समय को दर्ज करने की सधी–फुहड़ मिश्रित कोशिश करने में जुटा है। तो फिर, यह तो कहा ही जा सकता है कि समाज और राजनीति पर बहस करने के मुद्दे ही मुद्दे हैं।

वैसे इस सत्य से इंकार नहीं किया जा सकता कि जिस समय में अपने समकालीन सामाजिक व राजनीतिक मुद्दों पर विचार व्यक्त करने का प्रयास नहीं होता, वह समय इतिहास के पृष्ठों पर स्थान पाने से वंचित रह जाता है। हर समय व समाज को स्वयं के जिंदा होने का सूबूत देने के लिए आगे आना होता है। अंतिम बात यह कि जब तकनीक के सहारे आगे, और आगे निकाल जाने की होड़ और हड़बड़ी मची हो, जब सबकुछ उलट–पलट कर नया करने का हड़कम्प दिख रहा हो और जब हाशिए पर पड़े लोग भी मुख्य धारा के हिस्से बन 'आवाज' उठाने

व लगाने वालों में शामिल हो रहे हों, तब अपने समय के सामाजिक–राजनीतिक मुद्दों पर बात करना मायने रखता है।

डॉ. धनंजय चोपड़ा
पाठ्यक्रम समन्वयक,
सेन्टर ऑफ मीडिया स्टडीज,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय।

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

आभार ज्ञापन

भारत को आज आजाद हुये 71 वर्ष से अधिक हो रहा है। आजादी के साथ भारत कों आर्थिक पिछड़ापन, भंयकर गरीबी, निरक्षरता, महामारी, सामाजिक विषमता, जैसी चीजें उपहार में मिलीं थी। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत को उक्त चुनौतियों से लड़कर निजात पाते हुये एक विकसित भारत का निर्माण करना था। जिसमें राजनीतिक एवं सामाजिक मूल्यों जैसे स्वतंत्रता, समता न्याय, राजनीतिक सहभागिता, अस्पृश्यता, जातिगत भेदभाव का उन्मूलन आदि को स्थापित कर प्रौढ़ बनाना था।

यह देखा गया कि भारत में विकास के लक्ष्यों एवं तरीकों में वर्ष 1990 के बाद से परिवर्तन आया है। पहले जहाँ भारतीय अर्थव्यवस्था समाजवादी तथा मिश्रित प्रकृति की थी वही 1990 के बाद से पूंजीवादी स्वरूप में परिवर्तित हो गयी है। यह स्थापित सत्य है कि जब आधार में परिवर्तन आता है तब अधिरचना में स्वयं परिवर्तन आ जाता है अर्थात जब अर्थव्यवस्था की प्रकृति एवं स्वरूप में बदलाव आता है तब सामाजिक संरचना एवं राजनीतिक मूल्यों की प्रकृति में भी परिवर्तन आ जाता है। वैश्वीकरण एवं सोसल मीडिया ने आज भारत की चुनौतियों के स्वरूप को ही परिवर्तित कर दिया है। आज भारत के समक्ष अन्न की उपलब्धता होते हुये भी खाद्य असुरक्षा, आंतरिक विद्रोह एवं हिंसा, सीमा पार आतंकवाद, महिला असुरक्षा, किशोर अपराध, बेरोजगारी, कार्यपालिका एवं व्यवस्थापिका में टकराव नैतिक मूल्यों में ह्रास जैसी समस्याएँ चुनौती बन खड़ी हैं।

SAMPLE

उपर्युक्त चुनौतियों को आज का भारत किस तरह समाधान कर सकता है, का समवेत रूप से विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। यह पुस्तक भारत की सामाजिक एवं राजनीतिक प्रकृति की गतिशीलता का एक परिचयात्मक दृष्टि प्रस्तुत करती है। अतः इसका समकालीन संदर्भ स्नातक, स्नातकोत्तर एवं प्रतियोगी विद्यार्थियों हेतु उपयोगी एवं लाभदायक साबित होगी।

आज इस पुस्तक के प्रकाशन के अवसर पर उन सभी लेखकों के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके योगदानों से यह पुस्तक मूर्तमान हो सकी है। इसके साथ ही साथ मैं डॉ॰ लालजी त्रिपाठी (पूर्व प्राचार्य, मड़ियाहूँ पी.जी. कॉलेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर), डॉ॰ एम.पी.दूबे (पूर्व कुलपति), डॉ॰ राजेंद्र प्रसाद (कुलपति, इलाहाबाद राज्य विश्वविद्यालय प्रयागराज), डॉ॰ मनोज दीक्षित (कुलपति डॉ॰ राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय फैजाबाद), प्रो एच.के.शर्मा (राजनीति विज्ञान विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय), प्रो. अनुराधा कुमार (राजनीति विज्ञान इलाहाबाद विश्वविद्यालय), प्रो. डॉ॰ सुधांशु त्रिपाठी (राजर्षि टंडन मुक्त विश्वविद्यालय प्रयागराज), प्रो सविता भारद्वाज (प्राचार्या राजकीय पीजी कालेज गाजीपुर), डॉ॰ अनुपम पांडेय (एसोसिएट प्रोफेसर इलाहाबाद विश्वविद्यालय), प्रो श्री प्रकाश मणि त्रिपाठी (गोरखपुर विश्वविद्यालय), प्रो. गोपाल शर्मा (गोरखपुर विश्वविद्यालय), डॉ॰ कमला कांत त्रिपाठी (प्राचार्य, इंटर कालेज, तेजगढ़, प्रतापगढ़), प्रो. डॉ. प्रीति गौतम (निर्देशक, उच्च शिक्षा, उत्तर प्रदेश), प्रो. डॉ. पी.एन. डोगरे (प्राचार्य, के. एन. राजकीय पी.जी. कॉलेज, ज्ञानपुर, भदोही), प्रो. डॉ. पी.के. वार्ष्णेय (संयुक्त शिक्षा निर्देशक, उच्च शिक्षा, उत्तर प्रदेश), प्रो. डॉ. दिलीप कपूर (संयुक्त शिक्षा निर्देशक, उच्च शिक्षा, उत्तर प्रदेश) एवं प्रो. डॉ. अमित भारद्वाज (संयुक्त सचिव, उच्च शिक्षा विभाग, उत्तर प्रदेश शासन) के प्रति आभार ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस कार्य में हमारा सहयोग एवं मार्गदर्शन किया है।

अंत में मैं अपने प्रकाशक अखण्ड पब्लिशिंग हाऊस के स्वामी वीरेंद्र यादव जी के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ जिनके अथक परिश्रम से ही यह पुस्तक आज हम लोगों के हाथों में आ सकी है।

डॉ. गौरव त्रिपाठी

डॉ. कामिनी वर्मा

नमूना • SAMPLE

नमूना • SAMPLE

योगदान सूची

1. **डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार मिश्र,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी0एन0 (पी0जी0) कॉलेज, गुलावठी, बुलन्दशहर, उ0प्र0।
2. **अभय सिंह,** शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, बी0बी0ए0यू0, लखनऊ उ0प्र0।
3. **डॉ. अखिलेश कुमार द्विवेदी,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, शासकीय राजमोहिनी देवी कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अम्बिकापुर, सरगुजा (छ0ग0)।
4. **डॉ. आशीष धर त्रिपाठी,** अतिथि प्रवक्ता, राजनीति शास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद उ0प्र0।
5. **बालेश्वर प्रसाद,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, विधि विभाग, श्री जय नारायण स्नातकोत्तर महाविद्यालय, (के0के0सी), लखनऊ उ0प्र0।
6. **डॉ. उपासना मिश्रा,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, मनीषी महिला पी0 जी0 कालेज, गौरीगंज, अमेठी उ0प्र0।
7. **डॉ. ममता चंद्रशेखर,** प्राध्यापक 23, रेडियो कॉलोनी, रेसीडेंसी एरिया, इंदौर (मध्यप्रदेश)।
8. **डॉ. विभा,** असिस्टेट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जलेसर, एटा, उ0प्र0।
9. **डॉ. पुष्पा मिश्रा,** असिटेन्ट प्रोफेसर, समाजकार्य विभाग, जैन विश्वभारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)।

SAMPLE

10. **डॉ. विदुषी शर्मा,** एकेडमिक कांउसलर, इन्दिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
11. **डॉ. राम तिवारी,** असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातेजिक अध्ययन विभाग, वी0एस0एस0डी0 महाविद्यालय, कानपुर उ0प्र0।
12. **कामिनी वर्मा,** एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही उ0प्र0।
13. **डॉ. राजेश कुमार,** प्रवक्ता एंव अन्तर्राष्टीय मामलों के जानकार।
14. **डॉ. (श्रीमती) वन्दना द्विवेदी,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, श्री अग्रसेन महिला पी0जी0 कालेज, आजमगढ़ उ0प्र0।
15. **डॉ. शशी रानी अवस्थी,** एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, दयानन्द गर्ल्स पी0जी0 कालेज, कानपुर उ0प्र0।
16. **डॉ. प्रज्ञा मिश्रा,** असिस्टेंण्ट प्रोफेसर, गणित विभाग, दीन दयाल उपाध्याय राजकीय पी०जी० कॉलेज राजाजी पुरम लखनऊ, उत्तर प्रदेश, भारत।
17. **डॉ. शिखा जैन,** असिस्टेंन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, बी०एस०एम० पी०जी० कॉलेज, रुड़की, हरिद्वार उ0प्र0।
18. **डॉ. चेतना उपाध्याय,** वरिष्ठ व्याख्याता, जिला शिक्षा प्रशिक्षण संस्थान मसूदा, अजमेर (राजस्थान) 305001।
19. **डॉ. धीरज कुमार गुप्ता,** असिस्टेंन्ट प्रोफेसर, वाणिज्य विभाग, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, ज्ञानपुर, भदोही (उ0प्र0)।
20. **डॉ. कालूराम,** एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय, गभाना, अलीगढ उ0प्र0।
21. **सुरेश कुमार सिंह,** असिस्टेंन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, गभाना अलीगढ उ0प्र0।
22. **प्रोफेसर (डॉ.) प्रीति मिश्रा,** मानवाधिकार विभाग, विधि अध्ययन पीठ, बाबासाहेब भीमराव आंबेडकर विश्वविद्यालय, लखनऊ उ0प्र0।

23. **डॉ. हेमाराम,** व्याख्याता, भूगोल राजकीय महाविद्यालय, नागौर (राजस्थान)।

24. **डॉ. मेनका त्रिपाठी,** अध्यापिका/कवियत्री, कनखल, हरिद्वार, उत्तराखण्ड।

25. **डॉ आलोक चान्टिया,** मानव शास्त्री एवं अध्यक्ष अखिल भारतीय अधिकार संगठन, लखनऊ उ0प्र0।

26. **डॉ. गौरव त्रिपाठी,** असिस्टेंन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय पी0 जी0 कॉलेज, लालगंज, मीरजापुर उ0प्र0।

27. **डॉ. ऋचा शुक्ला,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, ग्राम्यान्चल पी0जी0 कॉलेज, हैदरगढ़, बाराबंकी उ0प्र0।

28. **डॉ. विनोद सिंह यादव,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, जन्तु विज्ञान विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर, हिमाचल प्रदेश।

29. **रामेश्वर नाथ मिश्र,** वरिष्ठ साहित्यकार, चिन्तक तथा सेवा निवृत्त अध्यापक ज्ञान भाष्कर विद्यालय, कलकत्ता, पश्चिम बंगाल।

30. **सुमन मौर्य,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर, राजस्थान।

31. **डॉ. वंदना शर्मा,** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, राजकीय महाविद्यालय, स्वार, रामपुर उ0प्र0।

32. **डॉ. रत्निका श्रीवास्तव,** सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतक।

33. **डॉ. रीना**, सहायक प्रोफेसर, राजनैतिक विज्ञान, वैश्य कॉलेज, भिवानी।

SAMPLE

नमूना • SAMPLE

विषय सूची

	पुरोवाक्	*vii*
	भूमिका	*ix*
	आभार ज्ञापन	*xiii*
	योगदान सूची	*xvii*
1.	भारत में ग्रामीण राजनीतिक सहभागिता का बदलता स्वरूप 73वें संविधान संशोधन का विशिष्ट सन्दर्भ *—डॉ. पुष्पेन्द्र कुमार मिश्र*	1
2.	खाद्य सुरक्षा कानून : भुखमरी व कुपोषण के खात्मे का हथियार – एक आलोचनात्मक समीक्षा *—अभय सिंह*	19
3.	भारतीय अर्थनीति के सत्तर वर्ष : एक समीक्षा *—डॉ. अखिलेश कुमार द्विवेदी*	43
4.	भारत–नेपाल : बदलते संबंध *—डॉ. आशीष धर त्रिपाठी*	74
5.	भारत में कार्यपालिका और न्यायपालिका संबंध : एक समीक्षात्मक अध्ययन *—बालेश्वर प्रसाद*	86
6.	भारत में महिलाओं की सुरक्षा केन्द्र और राज्य सरकारों के लिए चुनौती *—डॉ. उपासना मिश्रा*	126

SAMPLE

7. मानवाधिकारों में महिला संदर्भ 137
—डॉ. ममता चंद्रशेखर,

8. किशोर अपराध : न्याय और अधिकार 154
—डॉ. विभा

9. खाद्य सुरक्षा एवं सामाजिक समावेश 161
—डॉ. पुष्पा मिश्रा

10. समकालीन भारत में आधुनिक संचार के साधन, शिक्षा एंव प्रभाव 167
—डॉ. विदुषी शर्मा

11. भारत में 'आतकंवाद के पोषण धर्मोन्माद की भूमिका' 190
—डॉ. राम तिवारी

12. पंचायती राज एवं महिला नेतृत्व विकास 200
—डॉ. राजेश कुमार

13. नैतिक एवं चारित्रिक मूल्यों की प्रस्थिति : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में 240
—डॉ. श्रीमती वन्दना द्विवेदी

14. शिक्षित बेरोजगारी 250
—डॉ. शशी रानी अवस्थी

15. भारतीय समाज में पत्रकारिता (मीडिया) का प्रभाव 266
—डॉ. प्रज्ञा मिश्रा

16. समलैंगिकता : एक सामाजिक समस्या 273
—कामिनी वर्मा

17. 'वृद्धाश्रम' एक सामाजिक घटनाक्रम 280
—डॉ. चेतना उपाध्याय

18. गंगा का अस्तित्व कल और आज 287
—डॉ. धीरज कुमार गुप्ता

SAMPLE

19. भारतीय राजनीति में मोदी युग के निहितार्थ : एक विश्लेषणात्मक दृष्टि 297
–डॉ. कालूराम, सुरेश कुमार सिंह

20. भारत में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा एसिड अटैक के सन्दर्भ में 303
–डॉ. प्रीति मिश्रा

21. स्मार्ट सिटी : आवश्यकता और चुनौतियाँ 317
–डॉ. हेमाराम

22. गंगा स्वच्छता : एक विमर्श 328
–डॉ. मेनका त्रिपाठी

23. 21वी सदी की महिला पंचवर्षीय योजनाओं के आईने में 339
–डॉ. आलोक चान्टिया

24. स्वच्छता अभियान : एक आत्ममन्थन 350
–डॉ. गौरव त्रिपाठी, डॉ. ऋचा शुक्ला

25. भारत में साम्प्रदायिकता : एक विश्लेषणात्मक अध्ययन 359
–डॉ. शिखा जैन

26. स्वास्थ्य, नशा और समाज 366
–डॉ. विनोद सिंह यादव

27. भारतीय राजनीति में मूल्य–क्षरणः एक सर्वेक्षण 376
–रामेश्वर नाथ मिश्र

28. भारत में नक्सलवाद की समस्या एवं समाधान हेतु प्रयास 385
–सुमन मौर्य

29. तमिल राजनीति एक विमर्श 390
–डॉ. वंदना शर्मा, डॉ. रत्निका श्रीवास्तव

SAMPLE

30. भारतीय सुशासन में कम्प्यूटर की भूमिका : एक विश्लेषण 394
—डॉ. रीना

नमूना • SAMPLE

1

भारत में ग्रामीण राजनीतिक सहभागिता का बदलता स्वरूप

73वें संविधान संशोधन का विशिष्ट सन्दर्भ

राजनीतिक सहभागिता किसी भी लोकतान्त्रिक व्यवस्था का प्राण–तत्व है। प्रत्येक लोकतान्त्रिक समाज वास्तव में एक 'सहभागितापूर्ण समाज' होता है। यद्यपि प्रत्येक प्रकार की व्यवस्था में राजनीतिक शक्ति कुछ लोगों में ही केन्द्रित होती है (मोस्का, 1939: 50) तथापि ये सत्ताधारी लोग जनसाधारण को राजनीतिक प्रक्रिया में सहभागिता हेतु निरन्तर प्रेरित करते हैं ताकि व्यवस्था को सशक्त बनाया जा सके। जिस राजनीतिक व्यवस्था में जनसाधारण को राजनीतिक सहभागिता के अवसर प्राप्त नहीं होते वह व्यवस्था शीघ्र ही विघटन की ओर अभिमुख हो जाती है।

राजनीतिक सहभागिता की अवधारणा

राजनीति विज्ञान में राजनीतिक सहभागिता की अवधारणा को व्यवहारवादियों द्वारा लोकप्रिय बनाया गया है यद्यपि इसके प्रारम्भिक तर्क रूसो तथा गणतन्त्रवादियों आदि के लेखों में प्राप्त होते हैं। वर्तमान समय में राजनीतिक सहभागिता के सम्बन्ध में विद्वानों के अभिमत को उदारवाद (व्यवहारवाद) एवं समुदायवाद के दो भिन्न दृष्टिकोणों के रूप में देखा जा सकता है।

राजनीतिक सहभागिता सम्बन्धी उदारवादी दृष्टिकोण की मान्यता है कि सहभागिता एक 'व्यष्टिगत अभिवृत्ति' है तथा इसका वास्तविक अर्थ,

SAMPLE

व्यक्ति का राज्य या सरकार के प्रति अनुकूल अभिविन्यास है। अन्य शब्दों में, राजनीतिक सहभागिता का आशय शासन की प्रक्रिया में सहभागिता से है जिसके द्वारा नागरिक अपने नेतृत्व को चुनने और/अथवा शासकीय नीतियों को तैयार करने तथा योजना कार्यान्वयन की प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभाने में समर्थ होते हैं।

उदारवादी दृष्टिकोण के विपरीत समुदायवादी, उदारवादी व्यष्टिवाद की आलोचना करते हैं। समुदायवाद का इस सम्बन्ध में स्पष्ट अभिमत है कि 'सर्वहित की राजनीति' के लिए समुदाय के स्तर पर सहभागिता, 'अधिकार की राजनीति' के माध्यम से शासन की प्रक्रिया में भागीदारी से अधिक महत्वपूर्ण है। समुदायवादी ऐसी 'स्वायत्तता के उपयोग' को शासन की प्रक्रिया में सहभागिता से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं जो समुदाय का हित करे न कि राज्य का सहयोग। इस तर्क के अनुसार, अधिक विस्तृत राजनीतिक सहभागिता के अन्तर्गत, विस्तृत आर्थिक उद्यमों पर बाहर और भीतर की ओर से एक सीमा तक लोकतान्त्रिक नियन्त्रण, शासन का लघु इकाईयों के रूप में विकेन्द्रीकरण एवं जनमत संग्रह जैसे उपकरणों के अधिकाधिक प्रयोग को शामिल किया जाना चाहिए।

उपर्युक्त दोनों तर्कों के अन्तर्द्वन्द्वों के बीच यह स्पष्ट है कि राजनीतिक सहभागिता का वास्तविक आशय, राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर नागरिकों की सम्पूर्ण भागीदारी से है (वर्थवाल एवं पाण्डेय, 1974: 423)। राजनीतिक सहभागिता द्वारा, किसी भी व्यवस्था में, राजनीतिक विकास को न सिर्फ गति प्राप्त होती है वरन् इसके माध्यम से वह व्यवस्था अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक एवं उदार भी बनती है। वास्तव में, राजनीतिक सहभागिता को उन स्वैच्छिक क्रियाओं, जिनके द्वारा समाज के सदस्य, शासकों के चयन एवं प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से जन–नीतियों के निर्माण में भाग लेते हैं, के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। राजनीतिक सहभागिता के माध्यम से ही लोकतन्त्र में सहमति को मान्य अथवा अमान्य किया जाता है तथा शासकों को शासितों के प्रति उत्तरदायी बनाया जाता है (मैक्ग्लोस्की, 1968 : 253)।

राजनीतिक सहभागिता सम्बन्धी मैक्ग्लोस्की की उपर्युक्त परिभाषा को स्वीकार करने पर दो प्रमुख समस्याएं उत्पन्न होती हैं:

प्रथम, राजनीतिक सहभागिता की प्रवृत्ति केवल लोकतान्त्रिक समाजों में ही नहीं पायी जाती वरन् प्रत्येक उस समाज में, जहां किसी भी प्रकार की राजनीतिक सत्ता उपस्थित है, न्यूनाधिक मात्रा में राजनीतिक सहभागिता की प्रवृत्ति विद्यमान होती है; तथा

द्वितीय, यह भी आवश्यक नहीं है कि आधुनिक लोकतान्त्रिक समाजों में राजनीतिक सहभागिता की उच्च मात्रा ही उपस्थित हो। यह मात्रात्मक होने के स्थान पर गुणात्मक भी हो सकती है। तृतीय विश्व के अनेक देशों में सामान्यतः मतदान का प्रतिशत कम होने के बावजूद भी यहां राजनीतिक सहभागिता की प्रवृत्ति को विकसित देशों की तुलना में किसी भी दृष्टि से कमजोर नहीं माना जा सकता।

इस सन्दर्भ में एक महत्वपूर्ण बिन्दु यह भी है कि सामान्यतः पाश्चात्य जगत में राजनीतिक सहभागिता की अवधारणा को सीमित अर्थों में ही प्रयोग किया जाता रहा है। उदाहरणार्थ, आमण्ड एवं वर्बा (1961: 13–17) ने 'द सिविक कल्चर' में राजनीतिक संस्कृति को तीन श्रेणियों में विभाजित करते हुए सहभागी संस्कृति को विकसित समाज का लक्षण माना। वे यह भी स्वीकार करते हैं कि राजनीतिक सहभागिता, राजनीतिक संस्कृति के विकास एवं समाज को अधिक लोकतान्त्रिक तथा आधुनिक बनाने की प्रक्रिया का अनिवार्य घटक है। उनके अनुसार, लोकतान्त्रिक प्रक्रिया में नागरिक निम्न क्रियाओं में भागीदारी की अपेक्षा करते हैं– *राजनीतिक परिचर्चा, राजनीतिक अभिरूचि, मतदान, राजनीति के बारे में जानकारी, सरकार को प्रभावित करने की सामर्थ्य के बारे में सामान्य जागरूकता, नागरिक मामलों में सक्रिय सहभागिता।*

इसी क्रम में मिलब्रैथ (1965) के अनुसार, राजनीतिक सहभागिता के अनिवार्य घटक हैं–

1. मतदान
2. परिचर्चा एवं अभिमत अभिव्यक्तिकरण
3. चुनाव चिन्ह युक्त बिल्ला, स्टीकर लगाना
4. राजनीतिक सभाओं में सहभागिता एवं सक्रिय दलीय सदस्यता
5. राजनीतिक कोष एकत्रीकरण

6. चुनाव में कार्यालय चलाना, देखना; एवं
7. विरोध एवं प्रदर्शनात्मक गतिविधियों में सहभाग आदि–आदि।

राजनीतिक सहभागिता की उपर्युक्त कसौटियों के विश्लेषण से स्पष्ट है कि इनके निर्धारण में संकुचित दृष्टिकोण को अपनाते हुए निर्वाचनों के समय प्रचार अभियान एवं इससे सम्बन्धित क्रियाओं को ही मुख्यतः सम्मिलित किया गया है। इसके विपरीत, वर्तमान समय में राजनीतिक सहभागिता की अवधारणा का उपयोग व्यापक अर्थ में किया जा रहा है। अपने व्यापकतम अर्थ में राजनीतिक सहभागिता, जनता द्वारा प्रत्यक्षतः राजनीतिक विचारों को अभिव्यक्त करने से सम्बन्धित सभी प्रकार के व्यवहार का पर्याय है (मैथ्यूज एवं प्रोथो, 1966: 27)। इसके अन्तर्गत परम्परागत क्रियाओं के अतिरिक्त, राजनीतिक निर्णयों के प्रति सहमति अथवा असहमति अभिव्यक्तिकरण, राजनीतिक नेतृत्व का विरोध/समर्थन तथा प्रदर्शन एवं उपद्रव जैसी विभिन्न राजनीतिक क्रियाओं को भी सम्मिलित किया जाता है। वस्तुतः राजनीतिक सहभागिता, नागरिक विशेष में सहभागी–नागरिकता–समष्टि का भाव उत्पन्न करती है। इस समष्टिगत भाव के निम्न घटक हैं (इंकेलेस, 1969: 342):

1. परम्परागत प्राधिकार से स्वतन्त्रता,
2. सार्वजनिक विषयों में अभिरूचि; एवं
3. राजनीतिक/शासकीय प्रक्रिया हेतु प्रशिक्षण, जिसमें नियमों एवं अधिनियमों की स्वीकार्य एवं आवश्यक संरचना को स्वीकार करना सम्मिलित हैं।

उपर्युक्त समस्त विवेचन से स्पष्ट है कि राजनीतिक सहभागिता का वास्तविक आशय, राजनीतिक व्यवस्था के विभिन्न स्तरों पर व्यक्तियों की संलिप्तता से है। इस सन्दर्भ में यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि ग्रामीण सन्दर्भ में सहभागिता शब्द का एक विशेष अर्थ है। इसके अन्तर्गत, सहभागिता को संसाधनों के आबंटन एवं वितरण सहित निर्णय–निर्माण प्रक्रिया में व्यक्तियों की भागीदारी का सूचक माना जाता है। यहां 'व्यक्तियों' से आशय, विकास की प्रक्रिया से बाहर रहने वाले पीड़ितों एवं सहभागिता की प्रक्रिया में लाभार्थी के रूप में सम्मिलित होने वाले लोगों से है (चोपड़ा, कादेकोडी एवं मूर्ति, 1989: ए–189)। अन्य शब्दों में, ग्रामीण सन्दर्भ में, सहभागिता एक ऐसी

सक्रिय प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत लाभार्थी समूह अपनी आय में अभिवृद्धि, व्यक्तिगत संवृद्धि, आत्म–निर्भरता एवं अन्य मूल्यों में अभिवृद्धि के उद्देश्य से विकास कार्यों के निर्देशन एवं क्रियान्वयन आदि को प्रभावित करते हैं (पॉल, 1989: 100–106)। भारत में तृणमूल स्तर पर स्थानीय स्वशासन (पंचायत तथा नगर पालिका संस्थाएं) को राजनीतिक सहभागिता के उत्प्रेरक के रूप में स्वीकार किया गया है। भारत में ग्रामीण स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के विकास को स्वतन्त्रता पूर्व तथा स्वातन्त्रयोत्तर के दो उपशीर्षकों में विश्लेषित किया जा सकता है।

स्वतन्त्रता पूर्व विकास क्रम

ध्यातव्य है कि भारत में तृणमूल स्तर पर राजनीतिक सहभागिता का लम्बा इतिहास रहा है। भारत के प्राचीनतम उपलब्ध ग्रन्थ, ऋग्वेद में सभा तथा समिति के रूप में लोकतान्त्रिक स्वायत्तशासी संस्थाओं का उल्लेख मिलता है (मजूमदार, रायचौधुरी एवं दत्त, 2006: 24–25)। इतिहास के विभिन्न अवसरों पर केन्द्र में राजनीतिक उथल–पुथल के बावजूद सत्ता परिवर्तनों से निष्प्रभावित रह कर, ग्रामीण स्तर पर, ये स्वायत्तशासी संस्थाएँ (पंचायतें) आदिकाल से निरन्तर किसी न किसी रूप में कार्यरत रही हैं (शरण, 1997: 402–420)।

भारत में तृणमूल स्तर पर जन सहभागिता की अभिवृद्धि हेतु सरकारी प्रयासों को जानने–समझने के लिए हमें ब्रिटिश औपनिवेशिक काल से पीछे जाने की आवश्यकता नही है। इस सन्दर्भ में वर्ष 1870 ई. एक महत्वपूर्ण मील स्तम्भ माना जा सकता है जब वायसराय लार्ड मेयो का बहुचर्चित प्रस्ताव पारित हुआ। मेयो के प्रस्ताव में आर्थिक विकेन्द्रीकरण को एक महत्वपूर्ण लक्ष्य के रूप में स्वीकार करते हुए, प्रान्तीय सरकारों को अपने लिए स्थानीय वित्त का प्रबन्ध करने के लिए कहा गया। द्वितीय, मेयो प्रस्ताव में इस बात पर भी बल दिया गया कि भारतीयों को प्रशासन से सम्बद्ध किया जाए (चौधरी एवं कुमार, 2011: 265)। मेयो प्रस्ताव के बाद बम्बई, बंगाल, पंजाब एवं उत्तर–पश्चिमी प्रान्त (कालान्तर में संयुक्त प्रान्त) में स्थानीय प्रशासन की स्थापना हुई। वास्तव में मेयो के आर्थिक विकेन्द्रीकरण सम्बन्धी प्रस्तावों में ब्रिटिश शासकों की स्वार्थपरता निहित थी क्योंकि इससे करों को अधिक सरलता से लगाया और वसूला जा सकता था।

सन 1882 ई. में स्थानीय स्वशासन के विकास में एक नये अध्याय का सूत्रपात हुआ। इसी वर्ष दिनांक 18 मई को स्थानीय स्वशासन के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव आया जिसे 'स्थानीय स्वशासन के मैग्नाकार्टा' की संज्ञा दी गयी और लार्ड रिपन को भारत में स्थानीय स्वशासन के जनक के रूप में स्वीकार किया गया (मीणा, 2010: 36)। रिपन के स्थानीय स्वशासन पर प्रस्ताव, 1882 के अनुसरण में, ग्रामीण प्रदेशों में स्थानीय बोर्डों की स्थापना की गयी। प्रत्येक जिले में जिला उपविभाग, तालुका या तहसील बोर्ड बनाने की आज्ञा हुई। इन स्थानीय संस्थाओं को निश्चित कार्य तथा आय के साधन भी प्रदान किये गये। संस्थाओं में गैर–सरकारी सदस्यों का बहुमत रखा गया तथा सरकारी हस्तक्षेप को कम करते हुए, आशा की गयी कि सरकार इन स्थानीय संस्थाओं को आज्ञा देने के स्थान पर इनका मार्गदर्शन करेगी। इन स्थानीय संस्थाओं के एक प्रमुख उद्देश्य के रूप में, भारतीयों को राजनीतिक एवं सार्वजनिक शिक्षा प्रदान करना स्वीकार किया गया।

भारत में राजनीतिक सहभागिता के विकास क्रम का अगला चरण 1907–08 में चार्ल्स हाबहाउस की अध्यक्षता में विकेन्द्रीकरण पर गठित रॉयल कमीशन की रिपोर्ट से प्रारम्भ होता है। वस्तुतः भारतीय ग्रामों के सन्दर्भ में सर्वप्रथम इस आयोग ने ही स्पष्टतः स्वीकार किया कि अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत भारत में प्राचीन काल से चली आ रही ग्रामों की स्वायत्त व्यवस्था समाप्त हो गयी है। इसके अतिरिक्त आयोग ने यह भी माना कि ग्राम प्रबन्ध में वहां के स्थानीय लोगों की राय का उपयोग अवश्य होना चाहिये। ग्राम समिति की पुनःस्थापना होनी चाहिये तथा उसे उसके पुराने नाम 'पंचायत' के नाम से ही पुकारा जाना चाहिये।

रॉयल कमीशन की इन सिफारिशों को सन 1915 के भारत सरकार के स्थानीय स्वशासन पर प्रस्ताव में स्थान दिया गया। भारत शासन अधिनियम, 1919 (मॉन्टेग्यू–चेम्सफोर्ड सुधार) द्वारा स्थानीय स्वशासन को राज्यों की स्थानान्तरित सूची में रखा गया तथा इसका पूरा उत्तरदायित्व मन्त्रियों को सौंप दिया गया। इसके अतिरिक्त इस अधिनियम द्वारा सफल पंचायतों को छोटे–मोटे फ़ौजदारी व दीवानी मामले निबटाने तथा स्थानीय कर लगाने के अधिकार भी दिये गये (ए कलेक्शन ऑफ द एक्ट, 1921: 183–223)। इसी क्रम में, भारत शासन अधिनियम, 1935 के द्वारा प्रान्तीय स्वायत्तता को लागू

करते हुए पंचायतों को प्रान्तीय विधायी सूची में शामिल किया गया। प्रान्तों में द्वैध शासन को समाप्त करते हुए पंचायतों को वित्तीय अधिकार दिये गये तथा प्रत्येक प्रान्त में ग्राम पंचायतों के विकास हेतु कानूनों का निर्माण किया गया।

संक्षेप में, प्राचीन काल से लेकर स्वतन्त्रता के पूर्व तक जन सहभागिता के प्रोन्नयन की दिशा में शासकीय एवं गैर–शासकीय स्तर पर अनेक प्रयास किये गये तथापि देश की विशाल ग्रामीण जनसंख्या तथा ब्रिटिश शासक वर्ग के औपनिवेशिक चरित्र को दृष्टिगत रखते हुए; इन प्रयासों का कोई सुफल न निकला तथा आत्मनिर्भर ग्रामीण जीवन एवं प्रशासनिक स्वायत्तता का क्रमशः ह्रास होता रहा।

स्वातन्त्र्योत्तर काल में विकास क्रम

15 अगस्त 1947 को देश की स्वतन्त्रता के बाद नीति निर्धारकों के समक्ष तृणमूल स्तर पर राजनीतिक सहभागिता में अभिवृद्धि की चुनौती प्रच्छन्न रूप से सामने आयी। इस सन्दर्भ में, स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ ही, राष्ट्रीय स्तर पर इस हेतु अनेक कदम उठाए गये। भारत में ग्रामीण विकास एवं राजनीतिक सहभागिता सम्बन्धी केन्द्रीय प्रयासों का प्रारम्भ सामुदायिक विकास योजना के क्रियान्वयन के साथ शुरू हुआ। ध्यातव्य है कि 2 अक्टूबर 1952 ई. को सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत उत्तर प्रदेश के इटावा जिले से की गयी। इसे 55 सामुदायिक विकास प्रखण्डों में शुरू किया गया जिनमें से प्रत्येक में 100 से 120 तक ग्राम थे और तीन लाख जनता निवास करती थी (रामचन्द्रन, 2008: 183)। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का मूलभूत उद्देश्य, आर्थिक नियोजन और सामाजिक पुनरूद्धार की राष्ट्रीय योजनाओं के प्रति ग्रामीण जनता में सक्रिय रूचि पैदा करते हुए, ग्राम और ग्रामीण जनता का सर्वांगीण विकास करना था। यहां सर्वांगीण विकास से आशय, आर्थिक उन्नति, सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा, लोकतान्त्रिक पद्धति का प्रसार और सम्पूर्ण ग्राम के विकास से है। इस हेतु कार्यक्रम में अनेक कार्य निर्धारित किये गये जिनमें प्रमुख थे– परती और बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाना, उन्नत कृषि उपकरणों की व्यवस्था, कृषकों एवं कर्मचारियों का प्रशिक्षण, कुटीर उद्योगों को बढ़ावा, आवास प्रबन्ध, शिक्षा प्रबन्ध और लोक स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रमों की व्यवस्था आदि।